लौहित्य साहित्य सेतु: सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित अर्धवार्षिक द्विभाषिक ई-पत्रिका
वर्ष: 2 संख्या: 2 ; जनवरी-जून, 2021

# आखिरी लिबास

✍ ममता कालिया

हम लेखकों की मस्ती और पस्ती, खब्त और खामखयाली के क्या कहने ! बैंक का खाता कितना भी खुश्क हो, दिल-दिमाग में पड़े कहानी-कविता के खाके अपना असली खज़ाना लगते हैं, उसी पर अपना दम-खम है । कभी-कभी कोई छोटा-मोटा इनाम पा जाते हैं । जब से कोरोना ने हमें घर में कैद किया है, इनाम देने वाले दरियादिल हो गए हैं । रोज़ ही लेखकों के किसी न किसी जत्थे को इनाम घोषित होता है । आयोजक आपको ऑनलाइन सम्मानित कर देता है, ऑनलाइन प्रशस्ति-पत्र भेज देता है, घंटे भर का लाइव शो करवा लेता है और किसी की कोई भागदौड़ नहीं होती, लेखक की माथापच्ची के बारे में सोचने की किसे पड़ी है । वह तो वैसे भी निठल्ला है । क्या हुआ अगर खाट की जगह घंटा भर कुरसी पर बैठकर बोल-वोल दिया ।

महामारी के पहले कुछ ऐसे पुरस्कार ज़रूर मिलते थे जिनमें फूलमाला, श्रीफल और पाँच-दस हज़ार की नगण्य राशि होती । हम लेखक उसी से बहल जाते । इसी बहाने किसी आसपास के शहर में घूमना हो जाता ।

ऐसे ही एक मौके पर कमलेश्वर स्मृति सम्मान की घोषणा हुई - समग्र साहित्य के लिए मुझे दस हजार का और युवा कविता के लिए विवेक गौतम को पाँच हजार का । आने-जाने की व्यवस्था टैक्सी से । यह पुरस्कार बरेली में मिलना था । न कहने का कोई सवाल नहीं था । घूमने की शौकीन मैं, कमलेश्वरजी की स्मृति में सम्मान जिनकी न जाने कितनी यादें सन् 1965 से 2006 तक की मेरे अन्दर भरी हुई थीं, ऊपर से साथ में इतने सारे सह-लेखकों का सफर में हमसफर होना- विभूति नारायण राय, गंगाप्रसाद विमल, उपेन्द्र कुमार, विवेक गौतम और मैं । ठंड का मौसम था । दिल्ली से बरेली जाने वाला रास्ता साफ सुन्दर और सीधा । सड़क पर एक जगह अमरूदों से लदा ठेला खड़ा था । अमरूदों की खुशबू कार की खिड़की के शीशों से भी अन्दर आ रही थी ।

विवेक ने ड्राइवर से कहा,

‘गाड़ी रोको, ज़रा अमरूद ले लें ।’

गाड़ी रुकी । ठेले के पास ही एक मोची बैठा ग्राहक का इन्तज़ार कर रहा था । चौड़ी सड़क थी । सड़क के पार मैंने देखा एक दुकान का नामपट लिखा

हुआ था 'आखिरी लिबास' । मन में भय और आश्चर्य दोनों उठे । यह कैसा नाम है दुकान का । फिर देखा तो दुकान से सटा हुआ कब्रिस्तान भी दिख गया । नाम का आशय समझ आ गया ।

इस बीच विवेक गौतम काफी अमरूद खरीद कर वापस आ गए और गाड़ी चल पड़ी । सबने अमरूद में बुड़का मारा ।

जब काफी दूर आगे बढ़ गए, एकायक विवेक गौतम को याद आया 'अरे मेरा मोबाइल' । उन्होंने अपनी जैकेट की जेबें टटोलीं । पैन्ट की जेबें देखीं, कहीं मोबाइल फोन नहीं मिला । विवेक का चेहरा फक्क पड़ गया । उसने कहा,

-'इतने का तो इनाम भी नहीं मिल रहा जितने का मोबाइल फोन गुम हो गया ।'

हम सब फिक्रमंद हो गए ।

मोबाइल का खोना, सिर्फ एक फोन का खोना नहीं होता, उसमें हमारे सारे सम्पर्क, सम्बन्ध, सूचनाएँ, आंकड़ें और डायरी दर्ज होती है, उसमें हमारा फोटो-अल्बम, गैलरी और स्मृतियाँ भी महफ़ूज़ होती हैं । नया फोन लेकर भी ये सब उसमें दुबारा मिलना मुश्किल है ।

हम सबने बारी-बारी से विवेक के मोबाइल नम्बर पर फोन लगाया कि शायद कोई उठा ले । घंटी जाती रही, किसी ने उठाने की गलती नहीं की । तय किया गया कि गाड़ी को वापस अमरूदवाले ठेले के पास ले जाया जाय । हो न हो मोबाइल वहीं गिरा होगा । वह जगह तकरीबन पैंतीस किलोमीटर पीछे थी । अलबेली ठंडक में हमारा सफर पीछे की तरफ चला ।

मैंने कहा,

-'ठेलेवाला तो चलायमान प्राणी होता है । जरूरी नहीं कि उस जगह पर खड़ा मिले । जाने कहाँ चला गया हो ।'

विमल ने कहा,

-'आम तौर पर ठेलेवाले अपना ठीया नहीं बदलते । वे रोज़ एक जगह ही जमे रहते हैं।'

हम पहुँचे । ठेलेवाला वहीं खड़ा था । उसकी बिक्री अच्छी हुई थी । अमरूदों का ढेर काफी कम हो गया था । विवेक ने उतर कर पूछताछ की ।

अमरूदवाले ने गरदन हिला दी । उसने कोई मोबाइल-वोबाइल नहीं देखा । वह क्या जाने कैसा था उनका मोबाइल । पास बैठे मोची से पूछा,

-'भई, अभी यहाँ एक मोबाइल फोन गिरा था, कहीं तुमने देखा हो तो बता दो ।'

मोची बिगड़ गया

-'सबेरे से बैठे मक्खी मार रहे हैं, एकौ ग्राहक नहीं फटकौ । हम का जानी तोहार मोबाइल ।'

निराश, वहाँ से हमारी सवारी अब आगे की दिशा में बढ़ी । बरेली पहुँचने में भी देर हो रही थी। हम लोग विवेक के फोन नम्बर पर फोन मिलाते रहे । एक बार मेरे फोन मिलाने पर एकायक किसी ने फोन में डांट लगाई

-‘कौन हैं आप लोग, मार फोनवा कर कर के जान परेसान कर दिए । का काम है ?’

मैंने घबराकर फोन विवेक को पकड़ाया । विवेक ने उसे घटना बताई ।

उस आदमी ने लापरवाही से कहा,

-‘सड़क पर लावारिस पड़ा था । हम सोचे जाने कौन का है । नई मिला कोई तो इसे पुलिस चौकी में जमा कर देंगे ।’

विवेक ने कहा,

-‘ऐसा गजब मत कीजिए । हम लेने आ रहे हैं । आप कहाँ मिलेंगे बड़े भाई ।’

उस आदमी ने कहा वह मुरादाबाद मोड़ पर बस के इंतजार में खड़ा है । वह सिर्फ दस मिनिट रुकेगा। अगर बस आ गई तो फौरन चला जाएगा ।

अब हमारी टैक्सी फिर वापस जाने को मुड़ी । मेरे अंदर आगे पीछे जाने का धीरज टूट रहा था । ठंड के मारे बुरा हाल था । वहाँ एक चाय का खोखा था ।

मैं वहीं उतर गई,

-‘मैं यहाँ बैठ कर इंतजार करूँगी । आप लोग जायें ।’

उपेन्द्र कुमार भी वहाँ उतर गए ।

हमने चाय का ऑर्डर दिया । आशंका के अनुरूप चाय बहुत रद्दी थी । उसमें चीनी के सिवाय कुछ और तत्व न था । ऊपर से वहाँ मक्खियाँ भी मज़े कर रही थीं । उपेन्द्र कुमार उठकर बाहर धूप में खड़े हो गए । मैं जब उठने लगी न जाने कैसे एक मक्खी फड़फड़ाती हुई आई और मेरी नाक में घुस गई ।

उफ वह बेचैनी और घबराहट शब्दों में बतायी नहीं जा सकती ।

मुझे लगा वह मेरे ब्रेन में पहुँच जाएगी ।

खोखे के दरवाजे पर लगी पानी की टंकी से खूब नाक-आँख धोये । कोई फायदा नहीं । एक बार ज़ोर से नाक साफ़ की । बहुत ज़ोर की छींक आयी और मक्खी फड़फड़ाती हुई बाहर निकल आई। मेरी जान में जान आयी । लेकिन वह सेंसेशन, नाक में उसकी फड़फड़ देर तक महसूस होकर मुझे बेचैन करती रही ।

काफी देर बाद हमारी टैक्सी अपनी दिशा में आती दिखी । इस बार टैक्सी में विवेक गौतम प्रसन्नचित्त बैठे हुए थे । सबके चेहरे पर मोबाइल अभियान की सफलता का संतोष था ।

थोड़े ही दिनों बाद कोरोना काल आ गया । कहीं भी जाना सपना हो गया । अपने ही घर में ऐसे बच-बचकर रहने लगे जैसे अपने ही सजीव, निर्जीव

हर स्पर्श में संक्रमण है । मकान बन्द, दुकानें बन्द, डॉक्टर के दवाखाने बन्द ।

किसी विषम प्रसंग में दिल्ली बरेली मार्ग पर एक दिन निकलना हुआ । चौड़ी सड़क पहचानी हुई लगी। वहाँ न अमरूद का ठेला था, न मोची । सड़क पर कर्फ्यू जैसा सन्नाटा था । चौराहे के सामने ‘आखिरी लिबास’ का नामपट एक तरफ से झूल कर टेढ़ा लटक रहा था । दुकान बन्द थी । बन्द दुकान के आगे एक दस-बारह साल का लड़का कुछ जालीदार सफेद, काली टोपियाँ सजाकर बैठा हुआ था ।

-‘क्यों यह दुकान बन्द हो गई क्या ?’- मैंने पूछा । लड़का कुछ नहीं बोला । मेरी तरफ देखता रहा ।

मैंने सवाल दोहराया,

-“यहाँ यह दुकान थी न ‘आखिरी लिबास’ क्या हुआ उसका ?”

लड़के ने मायूस आवाज़ में कहा,

-“कोरोना में बहुत मौतें हुईं । सारा माल बिक गया ।”

फिर, मैंने सवालिया निगाह से उसे देखा ।

-‘जाने कहाँ से अब्बाजान को कोरोना लग गया । अब्बू का इंतकाल हो गया । दुकान बन्द हो गई ।’

-‘दुकान का आखिरी कफ़न उन्हीं के काम आया ।’

-‘तुम्हारे अब्बाजान थे ।’

-‘जी’ ।

उसने आँखें झुका लीं । शायद पनीली थीं ।

-'यह तो बहुत बुरा हुआ ।'- मैंने अफसोस जताया ।

लड़का खामोश रहा । उसने पास पड़ा एक फटा कपड़ा हाथ में थामा । अब वह टोपियों के ऊपर से धूल हटा रहा था ।

**संपर्क-सूत्र :**
बी 3ए/303 सुशांत एक्वापोलिस
क्रांसिंग्ज़ रिपब्लिक
गाज़ियाबाद - 201016
ई-मेइल : mamtakalia011@gmail.com